क्या यह सच है कि

औरत औरत की दुश्मन है?, है, तो क्यों

कमला भसीन

जब हम औरतों की कठिनाइयों और उनके साथ होने वाली ज़्यादतियों की बात करते हैं तो अकसर कई स्त्री या पुरुष कह उठते हैं—"आप पुरुषों को ही क्यों दोष देती हैं,औरतें भी तो औरतों की दुश्मन होती हैं। घरों में मांएं ही तो बेटे और बेटी में भेदभाव करती हैं। सास-ननद ही तो बहू को तंग करती हैं। औरतें कहां एक दूसरे को बढ़ावा देती हैं।"

औरतें भी एक दूसरे के साथ ज़्यादती करती हैं—यह सच है। इसे नकारा नहीं जा सकता। लेकिन इस बात पर गहराई से सोचना ज़रूरी है। यह समझना ज़रूरी है कि औरतें क्यों एक दूसरे के साथ दुश्मनी का सलूक या व्यवहार करती हैं। मांएं क्यों बेटियों पर बंधन लगाती हैं? उन्हें क्यों आगे बढ़ने के मौक़े नहीं देतीं।

इस विषय पर खूब बहस करके, सोच कर, हम इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि बात को ठीक से समझने के लिए हमें पूरे समाज को समझना होगा। अपने सामाजिक ढांचे या व्यवस्था को समझना होगा। लोगों के सोचने के ढंग को समझना होगा। कुछ पुरुषों और स्त्रियों को दोष देने से बात नहीं बनेगी।

पितृसत्ता क्या है?

हमारा सामाजिक ढांचा पुरुष-प्रधान या पितृ-सत्तात्मक है। पितृसत्ता का सीधा-सादा मतलब है पिता या पुरुष मुखिया की सत्ता या उनका राज। पितृसत्ता या पिद्रशाही एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसके तहत पिता या कोई पुरुष मुखिया परिवार के सभी सदस्यों, संपत्ति व आर्थिक साधनों पर नियंत्रण रखता है। वही मुख्य माना जाता है, उसी के नाम से परिवार जाना जाता है। उसके बाद उसकी सत्ता व अधिकार उसके पुत्र या किसी अन्य पुरुष के हाथ में चले जाते हैं। यानि खानदान या वंश पुरुषों से चलता है, जायदाद पर पुरुषों या पुत्रों का हक़ होता है। इसी पितृसत्ता से जुड़ी हुई ये धाराणाएं हैं कि पुरुष स्त्री से ऊंचा व उत्तम है, वह भगवान का रूप है, वह स्त्री का पति, स्वामी या मालिक है; स्त्रियों को हमेशा पुरुषों के आधीन व उनके नियंत्रण में रहना चाहिए। यह विचारधारा स्त्रियों को पुरुषों की संपत्ति का ही हिस्सा मानती है। यहां तक कि स्त्री के शरीर पर भी पुरुषों का हक़ माना जाता है।

पुरुष तो इस विचारधारा को मानते ही हैं लेकिन बहुत सारी स्त्रियां भी इसी तरह सोचती हैं। आखिर औरतें भी तो इसी ढांचे का हिस्सा हैं। हज़ारों सालों से औरतों ने भी तो यही सब देखा और सुना है।

धर्म भी यही सब सिखाते आ रहे हैं। सभी धर्म पुरुषों ने बनाए हैं। पुरुष ही उनकी व्याख्या करते हैं, वे ही चलाते हैं धर्मों को। सभी धर्म पुरुष को अधिक महत्व देते हैं। वे पुरुष को परिवार का मुखिया मानते हैं, पत्नि को पति या

स्वामी या मालिक के आधीन मानते हैं।

धर्मों का प्रभाव हमारी क़ानून व्यवस्था पर है। इसीलिए हमारे क़ानून भी पुरुष-प्रधान हैं। वे पुरुषों को अधिक महत्व और हक़ देते हैं। शिक्षा में, अखबारों, पत्रिकाओं, किताबों, रेडियों, टेलीवीज़न सब में पुरुषों का बोलबाला है। राजनीति, व्यवसाय, संपत्ति सब पुरुषों के हाथ में है। यानि चारों तरफ़ से यही सुनाई देता है कि पुरुष श्रेष्ठ है। औरतों ने यही सब देखा और सुना है। इसीलिए वे भी इसे ही सच मान लेती हैं। यही बातें फिर वे अपने बच्चों को सिखाती हैं—बेटे को आज़ादी, बेटी को बंधन, बेटे को अधिकार, बेटी को कर्तव्य, बेटे को रौब जमाना, बेटी को दबना।

पितृसत्ता को स्त्रियां ठीक उसी तरह मान लेती हैं जैसे बहुत से 'शूद्र' ब्राह्मणों की सत्ता को अपना धर्म समझकर स्वीकार कर लेते हैं।

औरतों के पुरुषसत्ता को स्वीकारने के और भी कई कारण हैं। औरतों को पढ़ने-लिखने, स्वतंत्र रूप से सोचने के अवसर कम दिए जाते हैं। उन्हें सीमित दायरों में रखा जाता है। इसीलिए न वे नया देख सकती हैं, न सोच सकती हैं। इसी वजह से वे उसी पुरानी लकीर पर चलती हैं।

अगर औरतों के दिमाग में पितृसत्ता के बारे में सवाल उठते भी हैं तो भी वे खामोश ही रहना पसंद करती हैं। कारण, उनके अंदर हिम्मत नहीं होती पुरुषों से सवाल जवाब करने की। क्योंकि वे पूरी तरह से पुरुषों पर या तो सचमुच में निर्भर होती हैं या वे यह मानती हैं कि वे निर्भर हैं। ज़्यादातर औरतें खुद इतना नहीं कमातीं कि वे अपना और अपने बच्चों का पेट पाल सकें, उन्हें रहने को घर दे सकें। संपत्ति उनके नाम पर नहीं होती। इसलिए वे पितृसत्ता को चुनौती नहीं दे पातीं। वे पितृसत्ता को और बढ़ाती रहती हैं।

चूंकि औरतें इसी समाज का हिस्सा हैं इसीलिए एक मां ही अपनी बेटी को बेटे से कम परोसती है, कम शिक्षा देती है, कम आज़ादी देती है। कई सासें बहुओं को अपना गुलाम बना लेना चाहती हैं। वे बहुओं की हत्या करने की साजिश में भागीदार होती हैं। मां-बेटी के आपसी तनाव भी अकसर बहुत जटिल व पीड़ादायक होते हैं।

स्त्रियों का योगदान क्यों?

पितृसत्ता की जड़ें इसीलिए इतनी मज़बूत हैं क्योंकि इसे चलाने में इससे शोषित स्त्रियां भी पूरा योगदान देती हैं। पर ऐसा क्यों है? शायद इसलिए कि औरतें बाध्य हैं, उन्हें कोई और रास्ता दिखाई नहीं देता, वे ये जानती ही नहीं कि जीने का कोई

और रास्ता भी हो सकता है। एक मां नौ महीने पेट में बच्चे को पालने के बाद यह सुनकर कि बेटी हुई है, सुबक पड़ती है। प्रसव के दर्द से समाज के तानों का डर अधिक होता है। दोष तो व्यवस्था का है। हर मां जानती है कि वर्तमान व्यवस्था में बेटी का होना क्या मतलब रखता है।

यह भी देखने में आता है कि पिता प्रत्यक्ष रूप से बेटी पर बंधन नहीं लगाते। वे सारे क़ायदे-क़ानून मां के ज़रिए लागू करवाते हैं। खुद भले बने रहते हैं। और फिर हर मां जो एक औरत है इस समाज में औरत होने की पीड़ा को खूब जानती है। इसीलिए अपनी बेटी को सुरक्षित रखने के लिए खुद दरोगा बन जाती है। मां को इस बात का भय हमेशा बना रहता है कि बेटी पर जुल्म न हों, समाज उसे कहीं पवित्रता की कसौटी पर खोटा न करार दे, कोई यह न कह दे कि मां ने कुछ सिखाया ही नहीं। और सिखाने की सारी ज़िम्मेदारी अकसर मां अकेले ही ढोती है। नैतिकता के सारे संदेश उसे ही बच्चों तक पहुंचाने होते हैं और चूंकि प्रचलित नैतिकता पुरुष सत्तात्मक है वे इसे ही थोपती रहती हैं।

पर कई बार मां के दिल को टटोलने पर यह भी देखा गया है कि उसका मन समाज की लगाई आग के धुएं की घुटन से भर गया है। वह कई बार जब खुल कर बोलने की हिम्मत करती है तो कहती है, "अगर मैं पढ़ी लिखी होती, अपने पैरों पर खड़े होने लायक होती तो इतना कभी ना सहती।" बहुत सी मांओं को यह भी अरमान होता है कि जो वे नहीं कर पाईं उनकी बेटियां करें। पर उन्हें अकसर इतनी छूट नहीं होती, उनमें इतनी आर्थिक शक्ति नहीं होती कि वे अपनी बेटियों को सशक्त व स्वाबलंबी बना सकें। वास्तव में औरतें इस ढांचे में पूरी तरह से फंसी हुई हैं।

जहां तक सास और बहू के रिश्ते का सवाल है, एक बस्ती की ग़रीब औरत ने इसे बहुत सरल तरीके से हमें समझाया। वह बोली, जैसे दो ग़रीब देशों की लड़ाई में हमेशा किसी अमीर देश का हाथ होता है वैसे ही दो औरतों की लड़ाई में अकसर किसी पुरुष का हाथ होता है।

सास-बहू के रिश्ते को भी गहराई से समझने की ज़रूरत है। एक सास के लिए बहू आने का मतलब होता है बेटे का बंटवारा। और फिर सास बनकर किसी और पर हुकुम चलाने का भी मौक़ा मिलता है। जिस औरत को कभी कोई पद या सत्ता न मिली हो उसके इस सत्ता का ग़लत इस्तेमाल करने की पूरी संभावनाएं रहती हैं। आखिर वह भी इंसान है और उस में भी वही संस्कार हैं और वही कमियां है जो सब में होती हैं। वह भी पितृसत्ता की विचारधारा की शिकार है। वह भी बेटे की मां होने को बड़ी बात मानती है, बहू को अपने बेटे के आधीन मानती है। उस के मन में यह भी खतरा होता है कि बेटा पूरी तरह से बहू का ना हो जाए। दूसरी तरफ़ बहू भी अपना घर अपनी मर्ज़ी से चलाना चाहती है। उसने बचपन से यही सपने देखे थे कि शादी के बाद वह अपनी मर्ज़ी का खा-पहन सकेगी, अपनी मर्ज़ी से उठ-बैठ सकेगी। इन सब कारणों से सास-बहू में तनाव रहता है। यह तनाव पितृसत्तात्मक ढांचे की ही देन है।

हमारे समाज में पुरुष सूर्य के समान है और स्त्रियां उपग्रहों के समान। सूर्य की अपनी चमक होती है लेकिन उपग्रह अपनी चमक सूर्य से पाते हैं। ठीक इसी प्रकार सास-बहू, ननद सभी पुरुष

से चमक, पद, इज्ज़त पाने की कोशिश करते हैं। बेटा अगर सास के कब्जे में है तो सास की इज्ज़त होगी, उसकी देखरेख होगी, वर्ना नहीं। दूसरी तरफ पति अगर पत्नी के नज़दीक है तो पत्नी की स्थिति बेहतर होगी। एक ही पुरुष पर निर्भर औरतें—चाहे वे सास-बहू हों, सत्ता की लड़ाई में एक दूसरे की दुश्मन बन जाती हैं। अगर स्त्रियों की अपनी चमक हो, अगर उन्हें पद व पेट के लिए पुरुष पर निर्भर न रहना पड़े तो इस प्रकार की रस्साकशी न हो। इसी वजह से हमारा यह मानना है कि स्त्रियां एक दूसरे की दुश्मन पुरुष-प्रधान ढांचे व विचारधारा के कारण बन जाती हैं। यह स्त्रियों की कमज़ोरी, हीनता की भावना का परिणाम है। एक सशक्त, आत्मनिर्भर, खुश औरत शायद ही किसी और औरत से दुश्मनी करे।

इसीलिए हमारी लड़ाई पुरुषों से नहीं है बल्कि पुरुष सत्ता से है व उन सब स्त्रियों और पुरुषों से है जो पुरुष सत्ता को बनाए रखना चाहते हैं। □